© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

भारतीय संस्कृति में बौद्ध कला का स्थान

डॉ0 नीलम यादव
प्रवक्ता
पं0 जवाहरलाल नेहरू इण्टर कालेज
बाँसगाँव गोरखपुर।

कला जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति है। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक साधना की जीवन्त क्षेत्र है जो प्रतीकात्मक पद्धति पर अवलम्बित है। बौद्ध कला के साधकों ने भी स्वान्तः सुखाय उसी सुरम्य प्राङ्गण को अद्योतित किया है। स्तूप, चैत्य, चक्र, गुहा आदि सभी उपकरणों में भावनायें अंकित हुई हैं। यहीं कला और धर्म तथा जीवन और साधना का समन्वय होता है। बौद्धाचार्यों ने इस समन्वित रूप की भलीभांति सुरक्षित रखा है।

पालि त्रिपिटक में यत्र तत्र कला की सामग्री बिखरी पड़ी है। दीर्घनिकाय में शिल्पियों की एक लम्बी सूची दी गई है। ब्रह्मजालसुत्त विद्याओं के प्रकरण में वास्तु विद्या का उल्लेख है। विनयपिटका के सेनासनक्खन्धक में बिहार के निर्माण की प्रक्रिया दी गई है। सम्भव है, यह प्रक्रिया उत्तरकालीन रही हो। मूलतः बौद्ध भिक्षुओं के लिए अरण्य, वृक्ष, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान वनप्रस्थ और अध्याकाश (प्राङ्गण) में रहने का विधान था। परन्तु बाद में भगवान् बुद्ध ने बिहार, अड्ढ योग, प्रासाद, हर्म्य तथा गुहा को निवास स्थान के लिए चुना। इसी प्रसंग में बिहार आदि बनाने की प्रक्रिया भी दी गई है। जातक और दिव्यावदान में भी एतत्सम्बन्धी सामग्री प्रचुरमात्रा में मिलती है।

बौद्धकला का प्रारम्भ भगवान् बुद्ध के घातु–विभाजन से हुआ लगता है। ये धातुएँ में तीन प्रकार की हैं। शारीरिक, औद्देशिक और पारिभोगिक। शारीरिक धातुयें वे हैं जिनका सीधा सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के अंगोपांगो से है। महापरिनिब्बान सुत्तन्त के अनुसार बुद्ध के परिनिवृर्त हो जाने पर उनके दग्ध शव में से अवशिष्ट धातुओं का विभाजन कुशीनगर के मल्ल, राजगृह के अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य अल्लकप्प के बुलि, पावा के मल्ल, रामगाम के कोलिय,, और वेठदीपक ब्राह्मण, इन आठ लोगों के बीच हो गया और उन्होंने क्रमशः कुशीनगर, राजगृह वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकप्प, पावा रामग्राम और वेठद्वीपप में उन धातुओं पर स्तूप बनवाये। इसी प्रकार बुद्ध की दन्त धातु का भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अर्हतों द्वारा प्रयुक्त वस्त्र, पात्र, वृक्ष आदि की भी पूजा का विधान हुआ है।

इन धातुओं को पृथ्वी के भीतर किसी बर्तन आदि में रखकर ऊपर से मिट्टी का सुन्दर कलात्मक ढ़ेर लगा दिया जाता था। स्मारक का यह प्राथमिक रूप रहा होगा। उसके संरक्षण के लिए वेदिका का निर्माण, सौन्दर्य वर्धन के लिए हर्मिका और छत्र का विधान शनैः शनैः विकास के रूप में होता रहा होगा। चैत्य भी

IJSRST1845346 | Received : 13 Jan 2018 | Accepted : 29 Jan 2018 | January-February-2018 [(4) 2 | 1703-1711]

लगभग इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहां स्तूप आदि में किसी धातु विशेष का विधान आवश्यक नहीं। उसके बिना भी अर्चना के प्रतीकात्मक रूप में स्तूप बना दिया जाता था।

शैशुनाग–नन्द–युग (छठी शती ई0 पू0 से चौथी शती ई0 पू0)–प्राड्.गण मौर्य काल की कला में पिपरहवा बौद्ध स्तूप और उसमें प्राप्त धातु गर्भ मञ्जूषा उल्लेखनीय है। पिपरहवा नेपाल की सीमा पर बस्ती जिले में कपिलवस्तु से 11 मील दूर पर स्थित है। सम्भवतः यह प्राचीनतम स्तूप है। इसे शाक्य के सम्बन्धियों ने बनवाया था (इयं सलिल निधने बुधस भगवते सकियानं)। यह स्तूप ईंटों से निर्मित अण्डकार का था। इसकी ऊँचाई $21\frac{1}{2}$ फुट और पादमूल चौड़ाई 116 है। स्तूप के गर्भ में प्राप्त मञ्जूषा में बुद्ध की शरीरधातु के अतिरिक्त शताधिक कलात्मक वस्तुयें उपलब्ध हुई हैं।

मौर्यकाल (325–184 ई0पू0)– 323 ई0 पू0 में चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनारूढ़ होने पर भारत की राजनीतिक स्थिति ध्ढतर हो गई। उसके बाद उसके पुत्र बिन्दुसार (298–272 ई0पू0) और पौत्र अशोक (272–232 ई0पू0) ने राज्य में और भी शान्ति स्थापित की। अशोक का तो अध्यात्मिक और राजनीतिक क्षेत्रों का समन्वय अनुकरणीय रहा है। कला के क्षेत्र में भी अशोक की यही विशेषता रही है। उसने स्तम्भों और स्तूपों का कलात्मक सृजन कराया था। बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा के स्मरणार्थ पाटलिपूत्र, लौरियानन्दन गढ़, लौरिया अरराज, बखिरा और लुम्बिनी में स्तम्भ बनवाये। इसी प्रकार सारनाथ और बोधगया में भी स्तम्भों का निर्माण कराया। ये स्तम्भ एक ही पत्थर से बनाये गये हैं। उनपर लगाये गये पशु शीर्षक अधिक आकर्षक हैं। उसकी कला की यह मौलिकता है। कुछ विद्वानों ने उसकी कला पर ईरानी कला का प्रभाव बताया है। यह सही भी हो, पर उसकी मौलिकता पर आघात नहीं किया जा सकता।

अशोक के स्तम्भों की विशेषता है–– एकात्मकता और उनपर पशुओं की आकृतियाँ। सारनाथ में उपलब्ध वेदिका एक ही पत्थर की बनी हुई है। वह जगतसिंह स्तूप की हर्मिका का एक अंश थी। चमकदार पालिश इसकी विशेषता है। अभी तक अशोक के 14 स्तम्भ मिले हैं। उनमें सारनाथ, साँची, कौशम्बी, लुम्बिनी और लौरिया अरराज के स्तम्भ विशेष उल्लेखनीय है। इस स्तम्भों के साधारणतः तीन भाग हैं–– मूल भाग कमल के आकार का है, मध्यभाग की पट्टिका पर हंस, अश्व आदि उकेरे गये हैं और शिरोभाग में सिंह, गज आदि की मूर्ति बनायी गई है। सारनाथ का स्तम्भ इस दृष्टि से उदाहरणीय है। इसके नीचे का भाग पद्माकार है। मध्यभाग की वर्तुल पट्टिका के बीच धर्मचक्र और अन्तराल में चार महाआजानेय पशु अंकित हैं तथा शीर्ष भाग में चार सिंह पीठ सटाये खड़े हुए हैं। उनके ऊपर एक धर्मचक्र भी दृष्टव्य है जिसका आध्यात्मिक महत्व है। यह प्रतीकात्मक है। इसे कालचक्र अथवा भवचक्र का सूचक समझा जाना चाहिए। साँची का भी सिंह स्तम्भ सारनाथ से मिलता–जुलता है। सिंह, गज आदि बुद्ध के प्रतीक है। पद्म विशुद्धि का प्रतीक है। कला की दृष्टि से अशोक के ये स्तम्भ आज भी अभूतपूर्व हैं। कहा जाता है कि अशोक ने 82 हजार स्तूप बनवाये थे।

शुंग काल (184–72 ई0 पू0)–– शुंग काल पुष्यमित्र के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है। पुष्यमित्र कट्टर बौद्ध विरोधी माना गया है पर उसके युग में बौद्ध कला का विनाश नहीं हो पाया। सच तो यह है कि उसके विरोध के बावजूद बौद्धकाल का उत्थान ही हुआ है। भरहुत और सांची के स्तूप इसके निदर्शन हैं। पाषाण का अधिकाधिक प्रयोग, उसमें विविध नक्काशी और अलंकरण, मूति शिल्प में लालित्य, केश विन्यास, दिव्य सौन्दर्य, इस युग को कला की विशेषतायें हैं। शुंग काल में स्तूप, बिहार, स्तम्भ, चैत्य, देवमन्दिर ओर चतुःशालवेदिका युक्त तोरण का विशेष निर्माण हुआ है।

भारहुत स्तूप–– स्तूप और चैत्य प्रायः समानार्थक हैं। स्तूप की संचित मिट्टी को ईंटों से आच्छादित कर दिया जाता था और उसपर चूने से लेपकर दिया जाता था भारहुत (नागोद) स्तूप का थोड़ा–सा ही भाग शेष रहा है पर सांची का स्तूप प्रायः वैसा ही है। इस पर निर्मित शिलापट्ट शुंग काल की देन है। इसके बाद वेदिका और अलंकृत तोरण भी निर्मित होने लगे। तोरण द्वारा चारों दिशाओं में चार होते थे। भरहुत स्तूप का व्यास 67 फुट $8\frac{1}{2}$ इंच था। कनिंघम को फूसका थोड़ा–सा उसका भाग हाथ लग पाया। स्तूप पक्की ईंटों से बना था इसकी नीव ीाी मजबूत थी। इसमे वज्रलेप युक्त प्रदक्षिणा पथ भी था। तोरण द्वारा मगर मच्छ भी आकृतियों से सुशोभित थे। प्रत्येक तोरण द्वारा दो बड़े स्तम्भों से निर्मित था। यह ज्ञातव्य है कि भारहुत में बुद्ध की मूर्ति उपलब्ध नहीं हुई। उसके स्थान पर स्तूप, धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, त्रिरत्न, उष्णीस, चूड़ा, चरणपदुका आदि प्रतीक अवश्य मिले हैं। भारहुत शिल्प में अनेक जातक कथाओं का अंकन हुआ है, इस स्तूप का मूलतः निर्माण अशोक के काल में हुआ था पर शुंग काल में उसमें ईंट के स्थान पर पत्थर की वेदिका और तोरणों का निर्माण कर दिया गया था।

सांची स्तूप––सांची स्तूप विदिशा से लगभग $5\frac{1}{2}$ मील दूर स्थित है। प्रारम्भ से ही और विदिशा का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। सांचीी के स्तूप को महाचैत्यगिरि कहा गया है। इसके आसपास लगभग 61 स्तूप हैं– 8 सोनकरी में, 5 सतधारा में, 3 अंधेर में, 37 भोजपुर में और 8 सांची के सर्वधिक महत्व पूर्ण स्तूप हैं–– सं0 1–2–और 3। ये स्तूप अशोक काल में ईंटों से बनाये गये थे पर शुंग काल में ये शिलाच्छादित कर दिये गये। तोरण द्वारा और अलंकृत वेदिका का निर्माण भी इसी काल में हुआ। आगे चलकर वासिष्ठपुत्र सातकर्णी ने इसे आगे बढ़ाया और गुप्त काल में फिर इसका विशेष विकास हुआ। अशोक कालीन स्तूप के व्यास को भी दुगुना कर दिया गया अतः इसे महास्तूप कहा जाने लगा। तोरण द्वारों में एक वैशिष्टय है जो विदिशा के दन्तकारों का स्मरण कराता है। स्तूप नं0 3 में सारिपुत्त और महामौद्गल्यायन की अस्थियाँ रखी गई हैं। महास्तूप में भगवान् बुद्ध की और नं0 2 में अन्य प्रमुख प्रचारकों की अस्थियां नियोजित की गई हैं। स्तूपों के अतिरिक्त अशोक स्तम्भ और चैत्यगृह भी मिले हुए हैं।

बोधगया में अशोक ने भगवान बुद्ध द्वारा महाबोधि प्राप्ति के उपलक्ष्य में महाबोधि संघाराम बनाया। उसके समक्ष चार अर्धस्तम्भ थे और पीछे बोधिवृक्ष या पीपल का ऊँचा तना था। धर्मचक्र और त्रिरत्न के चिन्ह

भी स्तम्भों पर मिलतें हैं। सपक्ष सिंह, अश्व, हस्ती, मृग आदि का अंकन बोधगया की विशेषता है। इस बोधगया मन्दिर का अनेक बार विकास हुआ है।

शुंग कला की कला का दर्शन भुवनेश्वर से 5 मीलदूर खणगिरि और उदयगिरि की सुरम्य पर्वत श्रङ्खलाओं में उत्कीर्ण हीनयानी गुफाओं में भी होता है। अशोक ने बिहार की बराबर पर्वत श्रेणी में गुफायें उत्कीर्ण कराने की परम्परा को स्थापित किया था जिसे उसके पौत्र दशरथ ने भी अनुकृत किया था। इसी समय रेवतक पर्वत, शूपरिक, भाजा, कालें, कन्हेरी जैसी गुफाओं का उत्कीर्णन भी मिलता है। यहाँ विशाल चैत्य मन्दिर और बिहार भी बनाये गये थे। ये चैत्य मन्दिर आयताकार थे, चतुरावलि हर्मिका और वेदिका तथा प्रदक्षिणापथ से अलंकृत थे। सामने लगे उतुंग कीर्तिस्तम्भ भी मिलते हैं। चैत्यगृहों की भित्तियां वेदिकाओं से अलंकृत थीं। कला की यह शैली 3 री शती ई0 पू0 से होकर 8 वीं शती तक मगध से कलिंग तक और सौराष्ट्र से दक्षिण में महाबलीपूरम तक लोकप्रिय हुई है। यहां कुछ हीनयानी गुफायें हैं जिनका निर्माण 3 री शती से 2 री शती ई0 तक हुआ और कुछ महायानी गुफायें हैं जिनका निर्माण 5 वीं शती ई0 से 10 वीं0 शती तक हुआ। इनमें दो रूप मिलते हैं चैत्यगृह और बिहार हीनयानी चैत्यागृह भाजा, कौण्डाने, पीतल खोरा, अजन्ता (गुहा सं0 9–10), नासिक और कार्ले। चैत्यगृहों में मण्डप, प्रदक्षिणापथ, स्तम्भ, गर्भगृह और स्तूप रहा करते थे। बिहार में एक मण्डप (आंगन), तीन या चार ओर चौकोर गर्भ शालायें (कमरें), सामने प्रवेश द्वार और उसके सामने स्तम्भों पर बना हुआ मुखमण्डप (बरामदा) रहता था। इन बिहारों में बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। ये चैत्यगृह और बिहार पहले काष्ठ के बना करते थे पर इस काल में पाषाण के बनने लगे कारीगरों का कौशल यहां दर्शनीय है।

भारत के पश्चिम भाग में बने चैत्यगृहों और बिहारों में भाजा, अजन्ता आदि स्थल भी महत्वपूर्ण हैं। भाजा उनमें सम्भवतः प्राचीनतम रहा होगा। यहां बिहार, चैत्यगृह और स्तूप बनाये गये थे। बिहारों में बनी प्रत्येक कोठरी में भिक्षु को सोने के लिए पत्थर की चौकी बनी हूई है। रथिकथाओं में सुन्दर–सुन्दर मूर्तियां उकेरी गई हैं। भाजा का चैत्यगृह 55 फुट लम्बा और 26 फुट चौड़ा है। प्रदक्षिणापथ और स्तूप वेदिका से अलंकृत हैं। यहां मूर्ति तो नहीं मिली पर त्रिरत्न, नन्दिपद, श्रीवत्स आदि मांगलिक चिन्ह अवश्य प्राप्त होते हैं। भाजा में 14 स्तूप भी मिले हैं।

कार्ले से 10 मील दूर पर कोण्डाने का चैत्यगृह और बिहार है जो काष्ट शिल्प का अनुकरणमात्र है। पीतलखीरा (औरंगाबाद के समीप) के चैत्यगृह की विशेषता है–स्तूप के गर्भ में स्फटिक की मञ्जूषायें और एक सोपान मार्ग। अजन्ता के चैत्यगृह और बिहार हीनयानी और महायानी, दोनों हैं। इसका निर्माण द्वितीय शती ई0 पू0 से सप्तम शती ई0 तक होता रहा है। यहां 29 गुफायें हैं। इनमें अनेक प्रकार के रमणीय चित्रों का भी अंकन हुआ है। नासिक में 17 गुफायें हैं। यहां जो चैत्यगृह है वह प्रारम्भिक गुहा के निर्माण के बाद का होगा। इस चैत्यगृह मे काष्ट शिल्प का प्रयोग बिलकुल नहीं किया गया। जुन्नार (पूना से 48 मील दूर), कालें (बम्बई

से 78 मी दूर) और कन्हेरी (बम्बई से 16 मील दूर) की गुफायें चैत्यगृह और स्तम्भ की शैली में लगभग समान हैं। कला की यहां जीवन्त साधना हुई है।

पवनी (भण्डारा जिला, महाराष्ट्र) ग्राम में (1969–70 ई0) के उत्खनन में शुड़्गकाल के दो विशाल स्तूपों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। ये अवशेष जगन्नाथ टेकड़ी और सुलेमान टेकड़ी के अधोभाग से निकाले गये हैं। इन दो स्तूपों में एक का तो आकार–व्यास सांची के प्रमुख स्तूप से भी अधिक है। ये स्तूप शुड़्ग–सातवाहन काल के हैं। मूलतः इनका निर्माण मौर्यकाल में हुआ था तथा शुड़्ग–सातवाहन काल में इसके रूप–विन्यास में कुछ परिवर्तन किये गये। भरहुत की भाँति इसके स्तूप की वेदिका और तोरण के भाग भी बौद्धधर्म से सम्बन्ध उकेरे गये शिल्प से अलंकृत थे। इनके कुछ अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं।

कुषाणकाल–– कुषाणकाल में मथुरा कला का सर्वमान्य केन्द्र था। यहाँ के कुषाण राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव ने अपने संरक्षण में ंकला का उत्कर्ष किया। मथुरा के कारीगरों ने भरहुत और सांची की कला को और आगे बढ़ाया। बाह्मय आकृति और भावों के उभार में समन्वयात्मक वृत्ति उनकी विशेषता थी। प्राकृतिक चित्रणों को भी इसमें समुचित स्थान दिया गया है। बौद्धों के यहाँ दो स्तूप मिले हैं–– एक कचहरी के पास हूविष्क का बनवाया हुआ है और दूसरा भूतेश्वर टीले की भूमि पर निर्मित है। ये स्तूप प्रायः ध्वस्त हो गये हैं फिर भी अवशेष उपलब्ध होने से उन्हें ई0 पू0 प्रथम शती के आसपास का माना जा सकता है। कुषाणकाल के शिल्पियों ने वेदिका के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया है। स्तम्भों पर नये–नये दृष्य और शालभञ्जिकायें भी उकेरी गई हैं।

बुद्धमूर्ति बनाने का श्रेय कुषाणकालीन मथुरा को है। सम्भव है गन्धार का भी उसमें योगदान रहा हो। अभी तक बुद्ध की पूजा मात्र प्रतीकों पर आधारित थी। इस समय तक भक्ति आन्दोलन काफी विकसित हो चुका था। प्रतीक पूजा मथुराकला में दिखाई देती है। पर उसके साथ ही बौद्धतेर सम्प्रदायों से प्रभावित होकर बौद्धधर्म में भी बुद्ध मूर्ति की पूजा होना प्रारम्भ हो गयी। बुद्ध और बोधिसत्व की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ मथुरा में उपलब्ध हुई हैं। कनिष्क के काल में मुद्राओं पर भी बुद्ध मूर्ति का अंगन होने लगा था। सारनाथ की बोधिसत्व की मूर्ति कनिष्क के राज्यकाल के तृतीय वर्ष मे बनी हुई है। उसका निर्माण परखम यक्ष के रूप पर आधारित है। बोधिसत्व की दूसरी मूर्ति कौशाम्बी में प्राप्त हुई है जो कनिष्क के राज्यकाल के द्वितीयवर्ष की है। वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव ने भी अनेक मूर्तियों का निर्माण कराया था। महायानी आचार्यों की प्रेरणा कनिष्क के लिए बुद्ध मूर्ति के निर्माण में मूल कारण रही। उत्तरकाल में धीरे–धीरे प्रतीक परम्परा समाप्त होती गई और मात्र मूर्ति बनायी जाने लगी। 32 महापुरूष लक्षणों से उसे अनुरञ्जित किया गया। प्रथम शती ई0 की यह विशेषता रही है। कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियों में कुछ खड़ी हुई हैं और कुछ बैठी हुई हैं। आजानवाहु, उष्णीस, चक्रचिन्हित हस्तपाद, नासाग्रहदृष्टि, लम्बकर्ण आदि जैसी विशेषताओं से बुद्ध मूर्ति अलंकृत की जाने लगी। मस्तक के पीछे प्रभा–मण्डल भी रहा करता था। मथुरा और गन्धार में निर्मित बुद्धमूर्तियों की संरचना में सम्भवतः सर्वास्तिवादी आचार्यों का विशेष योगदान रहा होगा।

गन्धारकला—— तक्षशिला और पुष्कलावती का क्षेत्र गन्धार अथवा गान्धार प्रदेश माना जाता था। इसके प्रमुख सात केन्द्र थे—— तक्षशिला, पुष्कलावती, नगरहार, स्वातघाटी या उड्डीयान, कापिशी, वामियाँ और बाह्लीक अथवा बैक्ट्रिया। इन केन्द्रों में यूनानी शिल्प को बौद्ध आदर्शों में प्रतिबिम्बित किया गया। इस कला की उत्पत्ति का समय ई0 पू0 प्रथम शती अथवा ई0 प्रथम शती है। तक्षशिला के समीपवर्ती सिरमुख, मोहरा मोराडू, पिप्पल, और जौलियाँ में बौद्ध बिहार और स्तूप मिले हैं। यहाँ अनेक बुद्ध बोधिसत्व की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार प्रतिमाशास्त्र की दृष्टि से गन्धार कला की ये विशेषतायें हैं—— बुद्ध के जीवन की घटनायें, बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियाँ, जातक कथायें, यूनानी देव—देवी और गाथाओं के दृश्य, भारतीय देवता और देवियाँ वास्तु, सम्बन्धी विदेशी विन्यास, भारतीय अलंकरण, एवं यूनानी, ईरानी, और भारतीय अभिप्राय एवं अलंकरण।[1] इन विशेषताओं से समलंकृत बुद्ध की मूर्ति में सजीवता और शाश्वतता झलकती है। यहाँ के शिल्पियों ने मथुरा और मध्यप्रदेश की कला से अनेक अभिप्राय लिये जो बौद्धधर्म की दृष्टि से अनुरूप थे।

आन्ध्र—सातवाहनयुग—— सातवाहनों को पुराणों में 'आन्ध्रभृत्य' कहा गया है। इनका साम्राज्य आन्ध्र में लगभग 200 ई0 पू0 से 200 ई0 तक रहा है। उसके बाद यहाँ इक्ष्वाकू राजाओं का आधिपत्य हुआ, जिनके सान्निध्य में नागार्जुनकोण्डा जैसे स्तूपों का निर्माण हुआ है। अशोक के प्रताप से आन्ध्र प्रदेश में बौद्धधर्म ने लगभग द्वितीय शती ई. पू. में पदार्पण किया। तबसे आन्ध्र बौद्धधर्म का केन्द्र रहा। विभिन्न निकाय वहाँ पुष्पित—फलित हुए हैं। उदाहरणार्थ अमरावती में चैत्यक निकाय, नागार्जुनकोण्डा और अल्लूरू में पूर्वशैलीय निकाय, पेड्डवेगी और घण्टशाल में अपरशैलीय निकाय। राजगिरी और सिद्धार्थक निकायों का भी अस्तित्व यहां रहा है। बौद्ध स्तूपों का निर्माण इन सभी निकायों की प्रेरणा से हुआ है।

अशोक की कला का प्रभाव यहाँ के स्तूपों आदि में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस दृष्टि से गुटपल्ले और संकाराम के स्तूप उदाहरणीय हैं। गुटपल्ले का स्तूप तृतीय शती ई. पू. के मध्य में और संकाराम का स्तूप द्वितीय शती ई. पू. में बनाया गया है। यहाँ शैलगुहा की शैली का आधार लिया गया है। यहीं चैत्यगृह भी मिले हैं। बिहारों के मण्डप, भिक्षुनिवास के रूप में गर्भशालायें, मुखमण्डप में द्वार और वातायन आदि सारी उसी शैली में बनाये गये हैं। अधिक सम्भावना यह है कि ये प्रारम्भिक काल के होंगे। काष्ठशिल्प की अनुकृति भी यहाँ मिलती है। गुटपल्ले का शिला निर्मित चैत्यगृह सुदामा, जुन्नार और कौण्डीविटे के चैत्यों से समानता लिए हुए हैं। यहाँ दो सुन्दर स्तूप भी मिले हुए हैं जिनमें साँची का अनुकरण दिखाई देता है। संकाराम में भी चैत्य, बिहार और स्तूप मिले हैं। ये सभी वृहदाकार में ईंटों से बने हुए हैं। इसी प्रकार गोली (गुण्टूर जिला), भट्टिप्रोलु, घण्टशाल और जगय्यपेट के महास्तूप भी आकार में बहुत बड़े हैं। इनका निर्माण प्रायः द्वितीय शती ई. पू. से लेकर पञ्चम शती ई. (पल्लव राजकाल) तक होता रहा है। इनमें प्रदक्षिणापथ और महावेदिकायें भी बनायी गयी थीं।

1. भारतीय कला, पृ. 335

आन्ध्र–सातवाहन युग की कला में अमरावती स्तूप का विशेष स्थान है। इसका नमा महाचेतिय था जिसका निर्माण चैत्यक निकाय की प्रेरणा से हुआ था। इस स्तूप का निर्माण घान्यकटक में हुआ था। इसके शिलापट्टों पर शताधिक दानलेख उट्टंकित हैं, जिनसे वहाँ की जनता की भावनाओं का पता लगता है। स्तूपों के साथ ही प्रदक्षिणापथ, महावेदिकायें, तोरणद्वार स्तम्भ आदि भी बनाये गये हैं जिनपर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र जैसे प्रतीक चिन्ह उकेरे हुए मिलते हैं। यहाँ उपलब्ध मूर्तियों की संख्या भी कम नहीं है। स्तूपों ओर मूर्तियों की कला में अमरावती की कला का इतिहास झलकता है। लगभग 5 वीं शताब्दी तक यहाँ विकास होता हुआ दिखाई देता है। प्रारम्भिक काल में बुद्ध के प्रतीक मात्र मिलते हैं। द्वितीय काल में प्रतीक के साथ मूर्तियों और दृश्यों का भी विन्यास हुआ है। तृतीय काल में यहाँ का वास्तु और शिल्प और अधिक विकसित हो गया है। इस समय अमरावती कला में निखार और अधिक आ गया। चतुर्थ काल में विविध आभूषण और अलंकरण गुप्तकाल में प्राप्त आभूषणों और अलंकरणों का स्मरण कराते हैं।

नागार्जुनीकोड (गुण्टूर जिला) का महास्तूप से लगभग 60 मील दूर है। यहाँ अनेक बिहार, स्तूप, धातुमञ्जूषायें और मृत्तिकापात्र मिले हैं। उनके खम्भों पर जो लेख प्राप्त हुए हैं उनसे इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का इतिहास ज्ञात होता है। नागाजुनीकोण्ड में महीशासक और गोकुलक बहुश्रुतीय शाखा का प्रभाव अधिक था। यहाँ का महाचेतिय स्तूप बुद्ध पूजा के लिए निर्मित किया गया था। मूलतः यह स्तूप अल्पेशाख्य था पर उत्तरकाल में इसे महेशाख्य के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। यहाँ का मूर्ति शिल्प भी समृद्ध है। नागार्जुनीकोण्डा की कला में सूक्ष्म भावों को उकेरने और मुद्राओं के विभिन्न विन्यास बनाने की विशेषतायें निहित हैं।

गुप्तकाल—– गुप्तकाल भारतीयकला, विशेषतः बौद्धकला, की दृष्टि से स्वर्णयुग कहा जाता है। मथुरा, और सारनाथ गुप्ताकालीन कला के प्रसिद्ध केन्द्र रहे हैं। इस युग की कांस्य मूर्तियों के समान ही सौष्ठव है। गुप्तकाल की मूर्तियों में प्रभाचक्र, सावर्त केश, कुड्मलाकार नयन और शान्त मुखाकृति विशेष रूप से दृष्टव्य है। इन मूर्तियों में चीवर का अंकन दो तरह से हुआ है। कुछ मूर्तियों में चीवर का विधान प्रान्तनिर्देष से होता था और कुछ में महीन रेखाओं के माध्यम से उसे उकेरा जाता था। सारनाथ और मथुरा की मूर्तियाँ इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं। अजन्ता की कला भी गुप्तकाल की विशेषतायें संजोये हुए है। यहाँ भी बुद्ध और बोधिसत्व के जीवन चित्रों का आलेखन हुआ है। एलोरा का भी इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। ये स्थान गुप्तकालीन चित्रकला की दृष्टि से उदाहरणीय है।

गुप्तकाल के बाद बौद्धधर्म की स्थिति भारत में बहुत डाँवाडोल हो गयी थी। जन साधारण पर उसका प्रभाव समाप्त हो चुका था। इस स्थिति में साहित्य और कला के क्षेत्र में बौद्धधर्म का विशिष्ट योगदान पीछे पड़ गया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि बौद्ध कला अपने क्षेत्र से बिलकुल बाहर हो गई। तथ्य तो यह है कि उसने अपना पग भारत को छोड़कर विदेशों की संस्कृति को आत्मसात करने के क्षेत्र में आगे बढ़ा दिया।

सम्भव है, इसी प्रभाव ने बौद्धकाल को भारत में भी किसी तरह जीवित रखा। गुप्त काल की कांसे की बनी बुद्ध मूर्तियाँ पाषाण की मूर्तियों से कम कला पूर्ण नहीं थीं। बिहार(सुलतान गंज) में प्राप्त बुद्ध मूर्ति (पाचवीं शती) ऐसी ही हैं। आठवीं ई. तक धातु मूर्तियों का निर्माण अच्छी तरह से होने लगा था। पालवंश (9–12 वीं शती तक) की धातु मूर्तियाँ आध्यात्मिक सौन्दर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ये मूर्तियाँ नालन्दा ओर कुर्किहारा से उपलब्ध हुईं हैं। बौद्ध कांस्य मूर्तियाँ दक्षिण में विशेष रूप से तंजोर जिले में, प्राप्त हुईं। उसका समय लगभग 9 वीं शताब्दी से 15 वीं शताब्दी तक माना जा सकता है।

बौद्ध कला भारतीय कला का अंग न होकर विश्वकला का अंग बन गई थी। लंका, वर्मा, थाईलेन्ड, नेपाल, तिब्बत, चीन, आदि देशों में बौद्ध कला का पर्याप्त विकास हुआ है। अशोक का सम्बन्धप विदेशी राजाओं से रहा ही है। उसके विकास स्तम्भों पर पारसी प्रभाव कदाचित् रहा भी, फिर भी भारतीय कला ने भी अन्य कला को प्रभावित किया ही है। यही कारण है कि मथुरा के क्षत्रपों के समय में और कुषाण काल में देशी'विदेशी कलाओं का संमिश्रण होने लगा था। गन्धार कला का जन्म इसी संमिश्रण से हुआ है। अफगानिस्तान (वेगराम) में प्राप्त मूर्तियाँ भी इसी तरह हैं। ग्रीक–रोमन का प्रभाव गन्धार कला पर अवश्य पड़ा है। जिसका प्रमाण बुद्ध की आदमकत मानवीय प्राचीन मूर्तियाँ हैं। अपोलो ग्रीक देवता के शारीरिक सौन्दर्य ने बुद्ध के शारीरिक सौन्दर्य को आकर्षित किया है। वामियान (अफगानिस्तान) की दो बुद्ध मूर्तियों गन्धार कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अफगानिस्तान (फोन्दु किस्मत) में ही उत्तर कालीन गन्धार कला की बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियाँ मिलती हैं।

नेपाल और तिब्बत की बौद्धकला पर पालवंशी बौद्धकला का प्रभाव है। वहां ध्यानी, मानुषी, भैषज्य, मैत्रेय, आदि बुद्ध और बोधिसत्वों के साथ ही तारा, लोकपाल, मारीचि आदि देवी देवताओं का अंकन हुआ है। नेपाल में मूर्तियों के अतिरिक्त शम्भूनाथ और बोधिनाथ के स्तूप विशेष आकर्षक रहे हैं। चीनी–तुर्किस्तान में भी बौद्ध कला का अच्छा प्रभाव रहा है।

जावा की बौद्धकला में आठवीं से 100 सवीं शती तक पाल और चोल वंश का प्रभाव रहा है। चण्डी मेन्दुत मंदिर बुद्ध बोधिसत्वों से परिवृत है। बोरोबुदूर का स्तूप भी अत्यन्त आकर्षक है। सिंगसारी (जावा) में प्राप्त 12–13 वी शती की प्रज्ञापारमिता की मूर्ति को विश्व प्रसिद्ध है।

श्रीलंका में बौद्धकला की दृष्टि से अनुराधपुर, पोलोन्नरूआ और सिरिगिरिया विशेष महत्वपूर्ण हैं। अनुंराधपुर की ध्यानावस्थित मूर्ति तो बहुत प्राचीन है। वैसे 11–12 वी शती की कला अधिक मिलती है। स्तूप और दगोबा भी अनेक हैं। बर्मा की कला में दसवीं शती का पैगन का गक्ये नदौन स्तूप उदाहरणीय हैं। यहां सारनाथ और नागार्जुनीकोण्डा का अधिक प्रभाव दिखता है।

बौद्धकला का विकास उन स्थानों पर अधिक रहा है जिनका विशेष सम्बन्ध बौद्धधर्म से रहा है। ऐसे स्थानो में मुख्य स्थान उत्तरी भारत में लुम्बिनी, सारनाथ, बोधगया, कुशीनगर (परिनिर्वाण भूमि), श्रावस्ती (सहेतमहेत), संकाश्व (संकिसा, फर्रूखाबाद), राजगृह, वैशाली, सांची, तक्षशिला, कौशाम्बी और नालन्दा हैं,

पश्चिम भारत में गिरनार, धांक (जूनागढ़), सिद्धसर (जूनागढ़), तलाजा (भावनगर), सान्हा (भावनगर), वलभी (भावनगर), काम्पिल्य (गुजरात, नवसारी), भज, कोण्डारी, पितल खोरा, अजन्ता, वेदसा, नासिक, जुन्नर, कार्ले, कन्हेरी, गोआ और कर्नाटक हैं, दक्षिण भारत में पवनी, (भण्डार, महाराष्ट्र), घण्टिशाला (कृष्णा जिला), नागपट्टन (मद्रास), श्री भूलवासम् और कांची। इन सभी स्थानों का सम्बन्ध बौद्धसंस्कृति के साथ घनिष्ठतम रहा है इसलिए यहां पर बौद्ध कला का विकास हुआ है।

इस प्रकार बौद्धकला ने अपनी मातृभूमि से बाहर जाकर विशेष विकास किया है। विदेशी कला से वह प्रभावित तो हुई ही है पर उसका भी विदेशी कला पर प्रभाव कम नहीं रहा। इस दृष्टि से भारतीय सांस्कृतिक क्षेत्र में बौद्धकला का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है।